|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 10: विभूतियोग

3/3 (श्लोक 19-42), शनिवार, 05 अगस्त 2023

विवेचक: गीता विशारद डॉ. संजय जी मालपाणी

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/xVsB1CC9_HA

भगवान की विभूतियाँ

श्रीमद्भगवद्गीता के दसवें अध्याय **विभूति योग** के तीसरे सोपान का विवेचन गीता वन्दना, सद्गुण साधना गीत, हनुमान चालीसा, मधुराष्टकम्, दीप प्रज्वलन और गुरु वन्दना के साथ आरम्भ हुआ।

पिछले सप्ताह हमने विभूति योग का वर्णन सुना और इस सत्र में वे विभूतियाँ कहाँ-कहाँ छिपी हैं, भगवान योगेश्वर के द्वारा अर्जुन को बतलाते हुए सुनेंगे परन्तु विभूतियों के बारे में जानने से पहले हमें यह जानना आवश्यक है कि इन विभूतियों को कहने का भगवान का क्या तात्पर्य था?

10.19

श्रीभगवानुवाच
हन्त ते कथयिष्यामि, दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः(ख्) कुरुश्रेष्ठ, नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे॥10.19॥

श्रीभगवान् बोले -- हाँ, ठीक है। मैं अपनी दिव्य विभूतियों को तेरे लिये प्रधानता से (संक्षेप से) कहूँगा; क्योंकि हे कुरुश्रेष्ठ ! मेरी विभूतियों के विस्तार का अन्त नहीं है।

विवेचन: योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन, इस चराचर जगत में भगवान की शक्ति व्याप्त है, इसलिए जहाँ भी देखोगे वहाँ मैं ही मैं हूँ। परन्तु तुम्हारे लिए मैं संक्षेप में अपनी प्रधान-प्रधान विभूतियाँ बता रहा हूँ।

10.20

अहमात्मा गुडाकेश, सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं(ञ्) च, भूतानामन्त एव च॥10.20॥

हे नींद को जीतने वाले अर्जुन ! सम्पूर्ण प्राणियों के आदि, मध्य तथा अन्त में मैं ही हूँ और सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तःकरण (हृदय) में स्थित आत्मा भी मैं हूँ।

विवेचन: भगवान जब-जब अर्जुन को किसी विशेष विशेषण से सम्बोधित करते हैं तो उसका महत्त्व होता है। यहाँ भगवान ने अर्जुन को **गुडाकेश** अर्थात **नींद को जीतने वाला** कहा है। ऐसा कहकर भगवान हम सभी को जागने का सन्देश दे रहे हैं। जागने का मतलब केवल आँखें खुली होना नहीं होता है। जागने का मतलब होता है अन्दर की आँखें खुल जाना। जब तक अन्दर की आँख नहीं खुलेगी तब तक हम इस विश्व की रचना को जान नहीं पाएँगे इसलिए भगवान हम सब को जागने को कहते हैं।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि सम्पूर्ण प्राणियों के आदि, मध्य और अन्त में भी मैं ही हूँ और प्राणियोंके अंतःकरण में आत्मरूप से मैं ही स्थित हूँ, सब भूतों में मैं विराजमान हूँ।

जब भगवान ने इतना सब कह दिया तो और कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। अर्जुन ने शिष्य बनकर स्वयं को भगवान को सौंपा है। "**शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्"।** जब कोई शिष्य बन कर अपने आप को गुरु के चरणों में सौंपता है तब गुरु उसे एक बालक की भाँति देखता है और बालक के समान उसकी शङ्का का समाधान करता है। छोटे बालकों को प्रारम्भिक शिक्षा देते हुए वर्णमाला पढ़ाते हैं। इसमें हम **क** से **कमल का पुष्प** दिखाते हैं। उस बालक का कमल से जुड़ाव हो जाता है और वह जब भी **क** की आकृति को देखता है तो उसे **कमल** का पुष्प ध्यान में आता है परन्तु आगे की कक्षाओं में वह बालक **कमल** को भूल जाता है और केवल **क** को याद रखता है। उसी प्रकार भगवान अर्जुन के समक्ष उसके भाव-संसार से सम्बन्धित चित्र उपस्थत करके उसकी समस्या का निराकरण कर रहे हैं।

ग से **गणेश** भारत में तो चलता है परन्तु किसी अफ्रीकी देश में जहाँ गणेश जी की पूजा नहीं होती, वहाँ यह सम्बन्ध स्थापित करना वहाँ के बालकों के लिए बड़ा कठिन होगा। इसलिए अफ्रीकी बच्चों का जुड़ाव जिन-जिन चीजों से है उन्हीं से उन्हें वर्णमाला सिखाई जाएगी। उसी प्रकार अर्जुन का जुड़ाव जिन चीजों से है उन चीजों से भगवान स्वयं का परिचय देना आरम्भ करते हैं। भगवान ने बड़े ही सुन्दर-सुन्दर प्रतीक बताए हैं।

10.21

आदित्यानामहं(म्) विष्णुः(र्), ज्योतिषां(म्) रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि, नक्षत्राणामहं(म्) शशी॥10.21॥

मैं अदिति के पुत्रों में विष्णु (वामन) (और) प्रकाशमान वस्तुओं में किरणों वाला सूर्य हूँ। मैं मरुतों का तेज (और) नक्षत्रों का अधिपति चन्द्रमा हूँ।

विवेचन: भगवान ने यह सबसे पहली बात बताई है कि मैं विष्णु अर्थात सञ्चालनकर्त्ता, विस्तारकर्त्ता और वर्तमान हूँ। ब्रह्मा अतीत हैं, वह सृजनकर्त्ता हैं, मानव की रचना करके उनका कार्य पूरा हुआ। अब मृत्यु तक उसका संरक्षण, सम्वर्धन और विस्तार करने वाले भगवान विष्णु हैं और मृत्यु से आगे फिर भगवान शङ्कर का काम आरम्भ होगा, वह संहारकर्त्ता हैं।

सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता और संहारकर्त्ता- ब्रह्मा, विष्णु और महेश के ये जो कार्य हैं, उनमें जो वर्तमान है, वह विष्णु है। यह बड़ा सुन्दर प्रतीक भी है कि जिसने वर्तमान में जीना सीख लिया वह आगे बढ़ता है। हम लोग अपने अतीत में जीते हैं अर्थात जो पुरानी घटनाएँ हैं उनको लगातार याद करते रहते हैं और उनसे निराश होते रहते हैं। आगे आने वाले भविष्य की चिन्ता हमें सताती है। हम लोग भविष्य में जीते हैं तो चिन्ताऐं आती हैं, भूत में जीते हैं तो व्यथाएँ आती हैं, लेकिन जिसने वर्तमान में जीना सीख लिया, जो अतीत को पीछे छोड़ आता है और भविष्य की चिन्ता नहीं करता, वह आगे बढ़ता है। चिन्ताओं में जीने वाला आगे कैसे बढ़ेगा? इसलिए जो संरक्षणकर्त्ता, विस्तारकर्त्ता और सञ्चालनकर्त्ता है, उस विभूति को भगवान सबसे पहले बताते हैं कि मैं आदित्यों में विष्णु हूँ।

फिर भगवान ने सूर्य के बारे में बताया। वैसे तो इस ब्रह्माण्ड में कितने ही सूरज, कितने ही अनन्त तारकमण्डल हैं लेकिन पृथ्वीवासियों के लिए सूर्य सबसे महत्त्वपूर्ण है। बिना सूरज के हमारा जीवन ठप्प हो जाएगा। हम रुक नहीं पाएँगे, हम इस जीवन की सृष्टि नहीं कर पाएँगे, सूरज हमारे लिए सब कुछ है और इसलिए भगवान ने कह दिया कि ज्योतिमान गोलों में, मैं सूर्य

हूँ। सबसे पहले विष्णु जी को बताया है, अधिक मन्दिर भी विष्णुजी के बने हुए हैं क्योंकि राम और कृष्ण भी तो विष्णु के अवतार हैं। बुद्ध भी विष्णु के अवतार हैं जिनके बहुत मन्दिर हैं।

भगवान कहते हैं कि कुल उनचास मरुत हैं, जिनमें मैं मरीचि हूँ और सत्ताईस नक्षत्र हैं जिनका स्वामी चन्द्रमा मैं हूँ। कालगणना चन्द्रमा के अनुसार करते हैं। अमावस्या के बाद प्रथमा, द्वितीया, तृतीया आदि तिथियाँ आती हैं। पूर्णिमा के बाद चन्द्रमा का आकार छोटा होता चला जाता है। बीच में जो-जो नक्षत्र आते हैं उनकी गणना की जाती है और इन सब नक्षत्रों का स्वामी चन्द्रमा को कहा जाता है। भारत में विकसित हुआ यह ज्ञान वास्तव में अचम्भित कर देने वाला है। हर चार वर्ष के बाद उस कालगणना में जो न्यूनाधिक हो जाता है, उसको ठीक करने के लिए एक अधिक मास भी डाला गया, उसको भी पुरुषोत्तम मास के नाम से यानि विष्णु के नाम से जाना गया है। यह पुरुषोत्तम मास हमें फिर से वर्तमान पर ले आता है। ऐसी सुन्दर कालगणना शायद ही और कहीं हुई होगी और उस काल से हम लोगों को सूर्य ग्रहण और चन्द्र गहण कब होते हैं, इसका ज्ञान हुआ।

महाभारत के युद्ध में भी जब अर्जुन ने शपथ ली कि सूर्य ढलने से पहले आज मैं जयद्रथ-वध का पराक्रम करूँगा, तब भगवान को यह पता था आज सूर्य ग्रहण होने वाला है। अर्जुन उससे पहले जयद्रथ को नहीं मार पाया और उसको लगा कि सूर्यास्त हो गया है, परन्तु सूरज जब उस ग्रहण से बाहर निकलता है तब भगवान ने कहा कि पार्थ देखो वह सूरज और यह जयद्रथ; और जयद्रथ का वध किया गया। सवा पाँच हजार वर्ष पहले हमारे यहाँ इस कालगणना से सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण कब आने वाले हैं, इसका ज्ञान उन लोगों को हुआ करता था। बड़े आश्चर्य की बात है कि कल तक हम यही जानते थे कि सूरज स्थिर है और सारे नवग्रह घूमते हैं और इन नवग्रहों की पूजा तो हमारे यहाँ हजारों वर्षों से हो रही है। सूरज के नौ ग्रह हैं यह हमने पहले से जान रखा था। यह जब हमें विज्ञान ने बताया, तब हमने उन पर भरोसा किया और जो शास्त्र में लिखा है उस पर विश्वास नहीं कर रहे थे।

हनुमान जी ने बचपन में जब सूरज को निगलने का प्रयास किया, तब वह सिर्फ पन्द्रह दिन के थे। तब भी सूर्य ग्रहण आया और उस समय जो राहु सूर्य को ग्रसित करने के लिए आने वाला था उसने इस बाल हनुमान को देखा कि छोटा सा जीव यह वानर सूरज की तरफ चला है, तो उसने जाकर इन्द्र को बताया कि सूरज पर आक्रमण हो रहा है। तब ऐरावत पर बैठकर इन्द्र आए और उन्होंने अपने वज्र से प्रहार किया जो कि हनुमान जी की ठुड्डी पर लगा, हनु पर लगा इसलिए उनका नाम हनुमान हो गया। हनुमान पवन के पुत्र हैं। पवन ने उन्हें धीरे से पकड़ा और नीचे लेकर आए और गुफा में रुक गए। हनुमान मूर्च्छित हैं और पवन उन्हें जगाने का प्रयास करते हैं। जब पवन गुफा के अन्दर रुक गया और अपने आप को समेट लिया, तब पृथ्वी पर त्राहिमाम मच गया कि क्या हो रहा है, हवा क्यों नहीं बह रही? तब इन्द्र आदि देवता उनको समझाने के लिए उस गुफा में आए और सबने अपनी तरफ से हनुमान को कुछ भेंट दी। उस समय इन्द्र ने स्वयं यह कहा कि तुम्हारा देह वज्र जैसा बन जाएगा और मेरा वज्र भी तुम्हारे ऊपर काम नहीं करेगा। ये सारे वरदान जब हनुमान प्राप्त कर रहे थे तो बोले कि सूर्य पीछे खड़े हैं, उनको आगे बुलाओ। उन्होंने मुझे कुछ नहीं दिया। छोटा बालक तो कुछ भी माँग सकता है। निर्दोष सूरज जो केवल अपनी गति से चल रहे थे, अपराधी के भाव से आगे आए और बोले कि तुम्हें क्या चाहिये? हनुमान बोले कि आपको तो सारे ब्रह्माण्ड का ज्ञान है तो आप मुझे ज्ञान दीजिए, सूरज कहते हैं कि मैं तो गतिमान हूँ, मैं रुक नहीं सकता और मेरी गति से चलना तुम्हारे लिए सम्भव नहीं होगा, ऐसे में, मैं तुम्हें शिष्य बनाऊँ भी तो कैसे? हनुमान जी कहते हैं कि आप चिन्ता न करें, मैं आपकी गति से चलूँगा।

हनुमान जी तो बल, बुद्धि और विद्या के दाता हैं- **बल बुद्धि विद्या देहू मोहि हरहु कलेश विकार।** उन्होंने एक युक्ति की, कि वे सूर्य के रथ में लगे हुए घोड़े पर उल्टा मुँह करके बैठ गए और बोले कि अब मैं आपके साथ चल रहा हूँ, आप मुझे ज्ञान दीजिए। मैं आपके साथ चलता भी रहूँगा, आपको रुकने की कोई आवश्यकता नहीं। तार्किक बुद्धि से हम भी सोचने लगें कि सूरज तो स्थिर है फिर घोड़े क्यों दिए सूरज को? सूरज भी अपनी ग्रह माला के सहित साढ़े तीन सौ मील प्रति सेकण्ड की रफ्तार से उस महासूर्य की परिक्रमा कर रहा है। भगवान कह रहे हैं कि नक्षत्रों में, मैं चन्द्रमा हूँ। सूर्य और चन्द्रमा के विषय में इसलिए कहते हैं क्योंकि वे प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं।

10.22

वेदानां(म्) सामवेदोऽस्मि, देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां(म्) मनश्चास्मि, भूतानामस्मि चेतना॥10.22॥

(मैं) वेदों में सामवेद हूँ, देवताओं में इन्द्र हूँ, इन्द्रियों में मन हूँ और प्राणियों की चेतना हूँ।

विवेचन: यहाँ भगवान ने ऋग्वेद नहीं कहा क्योंकि भगवान जानते हैं कि अर्जुन का और सामवेद का गहरा नाता है। अर्जुन जब अपने वनवास के समय में एक वर्ष तक इन्द्रलोक में थे तब वहाँ के गन्धर्वों ने उन्हें सङ्गीत का ज्ञान दिया। सङ्गीत सामवेद से है। अर्जुन योद्धा भी है। युद्ध का भी अपना एक सङ्गीत होता है। दो तलवारों के टकराने से जो टङ्कारध्वनि निकलती है वह भी एक सङ्गीत है।

अर्जुन ने इन्द्र के दरबार मे उर्वशी से नृत्य और गन्धर्वों से सङ्गीत सीखा है। अज्ञातवास के दौरान अर्जुन ने बृहन्नला बनकर विराटराज की पुत्री उत्तरा को नृत्य और सङ्गीत का प्रशिक्षण दिया था, इसलिए भगवान सामवेद की बात कर रहे है।

भगवान कहते हैं कि देवताओं में मैं इन्द्र हूँ। यहाँ अर्जुन को भगवान सिर्फ वही बता रहे हैं जो श्रेष्ठतम और शक्तिमान है। आगे भगवान कहते हैं कि इन्द्रियों में मैं मन हूँ। आधुनिक विज्ञान को अब तक केवल पाँच ही इन्द्रियाँ पता हैं। भगवान हमें यह बता रहे हैं कि मन छठी इन्द्रिय है।

ममैवांशो जीवलोके, जीवभूतः(स्) सनातनः।
मनः(ष्) षष्ठानीन्द्रियाणि, प्रकृतिस्थानि कर्षति॥१५.७॥

मन में जो इच्छा उत्पन्न होती है उसको पूरा करने के लिए बाकी इन्द्रियाँ काम में लग जाती हैं। सारी इन्द्रियाँ मन के अनुसार चलती हैं। इसलिए भगवान कहते हैं कि इन्द्रियों में मैं मन हूँ।

आगे भगवान कहते हैं कि प्राणियों में चेतना मैं हूँ। चेतन प्राणियों की प्राणशक्ति है, जिससे वे जीवित रहते हैं, वह मैं हूँ।

10.23

रुद्राणां(म्) शङ्करश्चास्मि,वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां(म्) पावकश्चास्मि, मेरुः(श्) शिखरिणामहम्॥10.23॥

रुद्रों में शंकर और यक्ष-राक्षसों में कुबेर मैं हूँ। वसुओं में पवित्र करने वाली अग्नि और शिखरवाले पर्वतों में सुमेरु मैं हूँ।

विवेचन: कुल ग्यारह रुद्र हैं, जो सुरभि के पुत्र हैं - कपाली, पिङ्गल, भीम, विरुपाक्ष, विलोहित, शास्ता, अजपाद, अहिर्बुध्य, शम्भु, चण्ड तथा भव।
और आठ वसु बताए गए हैं- अप (अह:/अयज), ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्युष, प्रभास। वसुओं को सरल भाषा में दूसरी प्रकार से समझाया गया है, जिसके अनुसार अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी और आकाश तथा इनके अतिरिक्त सूर्य, चन्द्रमा और तारे- ये आठ वसु कहे गए हैं।

योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं कि ग्यारह रुद्रों में मैं शङ्कर हूँ। शङ्कर मृत्यु के देवता तथा विनाश और प्रलय के अधिकारी हैं। जन्म और मृत्यु दोनों समग्रता से देखने की भारतीय दृष्टि है। भारतीय दृष्टि में मृत्यु को भी मङ्गल माना गया है। माना गया है कि मृत्यु अन्त नहीं, मध्य है और उसके पश्चात भी सृजन है। जीवन एक वर्तुल समझ गया है। हमारे यहाँ बहुत सुन्दर-सुन्दर श्लोक भगवद्गीता में भी हैं और वेदों में भी।

श्रीमद्भागवदगीता में मृत्यु को तो कपड़े बदलने के समान बताया गया है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,

नवानि गृह्णाति नरोपराणि|
तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि,
अन्यानि संयाति नवानि देही।।

हमारे यहाँ यदि परिपक्व मृत्यु होती है तो बाजे बजाकर उस मृत देह की अन्तिम यात्रा निकाली जाती है क्योंकि मृत्यु को हमने अन्त नहीं समझा। मृत्यु से फिर पुनर्जन्म की बात कही गई। एक शून्य पूर्ण होने पर दूसरे शून्य का उदय होता है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते|
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते||

हमारे यहाँ जीवन को सीधी लाइन नहीं समझा गया है। कोई सीधी लाइन निकालता हुआ चलता है तो भी वह वर्तुल ही पूरा करके आएगा क्योंकि पृथ्वी गोल है, सारे ग्रह मण्डल मण्डलाकार हैं और इसलिए हमारे यहाँ मृत्यु भी शुभ मानी गई, एक आनन्द उत्सव मानी गई। शङ्कर सङ्गीत, नृत्य और योग शास्त्र के भगवान माने गए। इसलिए भगवान कहते हैं रुद्रों में मैं शङ्कर हूँ।

कुबेर एक अति का नाम है, धन की अति या विपुलता। धन की आकाङ्क्षा जब बहुत ज्यादा होती है, तब वह राक्षस समझे जाते हैं। हमारी सोच से परे विपुल धन यानि कुबेर। इतनी विपुलता आ जाती है, वहाँ आकर्षण भी समाप्त हो जाते हैं। उसका कोई महत्त्व नहीं बचता। जब तक कुछ नहीं होता तब तक मानव चाहता है कि वह मिले। जब मिल जाता है तो उसकी महत्ता खत्म हो जाती है। भगवान कृष्ण कहते हैं कि मैं यक्ष और राक्षसों में कुबेर हूँ।

बिना अग्नि के हम जी नहीं पाएँगे। हमारी रसोई नहीं बनेगी। इसलिए अग्नि हमारे जीवन में श्रेष्ठ महाभूत है। भगवान कहते हैं कि मैं वसुओं में अग्नि अर्थात पावक हूँ।

भगवान कहते हैं कि पर्वतों में मैं मेरु हूँ। मेरु रत्नों के भण्डार वाला पर्वत माना गया है, इसलिए मेरु पर्वत श्रेष्ठतम पर्वत है।

10.24

पुरोधसां(ञ्) च मुख्यं(म्) मां(म्), विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं(म्) स्कन्दः(स्),सरसामस्मि सागरः॥10.24॥

हे पार्थ ! पुरोहितों में मुख्य बृहस्पति को मेरा स्वरूप समझो। सेनापतियों में कार्तिकेय और जलाशयों में समुद्र मैं हूँ।

विवेचन: बृहस्पति देवताओं के गुरु हैं, देवताओं के पुरोहित हैं, विद्याओं में अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। भगवान कहते हैं कि सेनानियों में स्कन्द यानी कार्तिकेय मैं हूँ जिनके छः मुख हैं। सेनापति की दृष्टि हर ओर होनी चाहिए। चारों तरफ दृष्टि होगी तो जल और थल पर देख पाएगा, उसे ऊपर और नीचे भी देखना है और चारों दिशाओं की ओर भी। इस प्रकार मुख्य दिशाएँ छः हैं, इसलिए कार्तिकेय को छः मुख वाला दिखाया।

आज का अन्तरिक्ष विज्ञान तो अभी विकसित हुआ, लेकिन हमारे यहाँ उस काल में भी सेनापति को ऊपर देखने को कहा गया। हम समझ सकते हैं कि शास्त्र कितना विकसित हो गया। जो हवा में भी उड़ता है, जमीन पर भी चलता है और पानी में भी तैरता है। ऐसे जल, थल और नभ तीनों में अपना अस्तित्व रखने वाले मोर को कार्तिकेय का वाहन बनाया गया। उसको रङ्ग भी ऐसे दिए गए जैसे हमारे सेना में हैं, जो जल्दी से किसी को दिखाई न दे। मोर अपने पङ्खो को पीछे से उठा लेता है ताकि पीछे से आने वाले शत्रु को आगे कुछ दिखाई न दे।

भगवान कहते हैं, जलाशय में मैं सागर हूँ। अपनी सीमाओं में रहने वाला गम्भीर और सर्वश्रेष्ठ, सबसे बड़ा पानी का स्रोत है सागर।

10.25

महर्षीणां(म्) भृगुरहं(ङ्),गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां(ञ्) जपयज्ञोऽस्मि, स्थावराणां(म्) हिमालयः॥10.25॥

महर्षियों में भृगु और वाणियों (शब्दों) में एक अक्षर अर्थात् प्रणव मैं हूँ। सम्पूर्ण यज्ञों में जप यज्ञ (और) स्थिर रहने वालों में हिमालय मैं हूँ।

विवेचन: अत्रि, मरीचि आदि ऋषियों में महर्षि भृगु को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। तिरुपति बालाजी में दिखाया जाता है कि भगवान के वक्षस्थल पर किसी के पद चिन्ह हैं, वह भृगु ऋषि के हैं। भगवान विष्णु के वक्षस्थल पर पादप्रहार? कैसी अद्भुत योग्यता रही होगी। कितना बड़ा अधिकार है।

गिर शब्द भाषा के अक्षरों से सम्बन्धित है और उसमें मैं एक अक्षर ओङ्कार हूँ। **एक ओङ्कार सतनाम**। यह एकमात्र अक्षर है जो कण्ठ से नीचे से आता है, शेष सभी अक्षर कण्ठ से ऊपर से ही निकलते हैं। प, फ, ब, भ, म- ओष्ठ्य हैं, त, थ, द, ध, न- दंत्य हैं। ये सभी अक्षर ऊपर ही रह जाते हैं, परन्तु कण्ठ से नीचे तक जाने वाली केवल एक ही ध्वनि है, वह है प्रणव, ॐ, अनहद नाद।

जप यज्ञ सबसे श्रेष्ठ बताया गया है। इसको किसी सामग्री की आवश्यकता नहीं होती। बारिश होने पर समिधाएँ गीली हो जाएँ तो यज्ञ में विघ्न पड़ सकता है, परन्तु जप यज्ञ अनवरत चलने वाला क्रम है। यह किसी भी ऋतु, काल और अशौच के समय में भी, मन में भी जब चलता रहे तो उसमें कोई बाधा नहीं आती।

न हिलने वाली वस्तुओं में मैं हिमालय हूँ, जो कि स्थिर और अडिग खड़ा है।

10.26

अश्वत्थः(स्) सर्ववृक्षाणां(न्),देवर्षीणां(ञ्) च नारदः।
गन्धर्वाणां(ञ्) चित्ररथः(स्), सिद्धानां(ङ्) कपिलो मुनिः॥10.26॥

सम्पूर्ण वृक्षों में पीपल, देवर्षियों में नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिल मुनि (मैं हूँ)।

विवेचन: श्रीमद्भगवद्गीता के पन्द्रहवें अध्याय में भगवान कहते हैं:

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥१५.१॥

इतने सारे वृक्षों में से पीपल के वृक्ष को ही श्रेष्ठ माना है क्योंकि यह रात को भी ऑक्सीजन देता है। वृक्षों में सम्वेदना है यह आधुनिक विज्ञान को बहुत बाद में पता चला। लेकिन वृक्षों में भी स्मृति है, उन्हें भी कुछ चीजें याद रहती हैं। वृक्षों की सम्वेदना के बारे में हमारे भारतीय वैज्ञानिकों को बहुत पहले से पता था।

जगदीश चन्द्र बोस ने बहुत बाद में एक बार फिर यह सिद्ध किया। ज्ञान, ध्यान और धारणा के लिए अधिकांश सिद्ध पुरुष पीपल के वृक्ष के नीचे बैठे। जिस बोधिवृक्ष के नीचे भगवान बुद्ध को बोध प्राप्त हुआ, वह भी पीपल का पेड़ है। हमारे मस्तिष्क में ज्यादा ऑक्सीजन रहनी चाहिए तब जाकर उसमें सजगता रहती है और चेतना लम्बे समय तक बनी रहती है। इसलिए पीपल का पेड़ एक अद्भुत पेड़ है। आयुर्वेद में भी पीपल के वृक्ष का बहुत महत्त्व है।

भगवान आगे कहते हैं, देवर्षियों में मैं नारद हूँ। देवर्षि भी अनेक हैं और नारद भी अनेक परन्तु देवर्षि नारद एक ही हैं, जिनका तीनों लोकों में सहज विचरण होता है। जो भगवान का मन जानते हैं और भगवान के प्रिय, वह देवर्षि नारद भगवान की विभूति

हैं।

अर्जुन और चित्ररथ की घनिष्ठता है। गान विद्या अर्जुन ने चित्ररथ से ही सीखी है। भगवान अपनी अनेक विभूतियों में से अर्जुन की परिचित चीजों की ही बात कर रहे हैं। अतः भगवान गन्धर्वों में चित्ररथ की बात करते हैं।

भगवान कहते हैं कि सिद्धों में मैं कपिल मुनि हूँ। कुछ तप से सिद्ध होते हैं, जबकि कुछ जन्म से ही सिद्ध होते हैं। कपिल मुनि जन्म से ही सिद्ध हैं। कर्दम जी के यहाँ पर देवहूति के गर्भ से कपिल मुनि का जन्म हुआ और वे उस साङ्ख्य शास्त्र के जनक हैं, जो कि श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय में भी बताया गया है।

10.27

उच्चैःश्रवसमश्वानां(म्),विद्धि माममृतोद्भवम्।
ऐरावतं(ङ्) गजेन्द्राणां(न्), नराणां(ञ्) च नराधिपम्॥10.27॥

घोड़ों में अमृत के साथ समुद्र से प्रकट होने वाले उच्चैःश्रवा नामक घोड़े को, श्रेष्ठ हाथियों में ऐरावत नामक हाथी को और मनुष्यों में राजा को मेरी विभूति मानो।

विवेचन: समुद्र मन्थन से चौदह रत्न प्राप्त हुए थे:

लक्ष्मीः कौस्तुभपारिजातकसुराधन्वन्तरिश्चन्द्रमाः।
गावः कामदुहा सुरेश्वरगजो रम्भादिदेवांगनाः॥
अश्वः सप्तमुखो विषं हरिधनुः शंखोमृतं चाम्बुधेः।
रत्नानीह चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्यात्सदा मंगलम्॥

उन रत्नों में उच्चैश्रवा नाम का घोड़ा भी है, जिसके सात मुख थे। हाथियों में ऐरावत भी भगवान की विभूति है। लक्ष्मी जी भी समुद्र मन्थन से ही आई थीं। राजा भी भगवान की ही विभूति है, इसलिए हमारे यहाँ राजा को विष्णु का अवतार माना गया है।

10.28

आयुधानामहं(म्) वज्रं(न्), धेनूनामस्मि कामधुक्।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः(स्), सर्पाणामस्मि वासुकिः॥10.28॥

आयुधों में वज्र (और) धेनुओं में कामधेनु मैं हूँ। सन्तान-उत्पत्ति का हेतु कामदेव मैं हूँ और सर्पों में वासुकि मैं हूँ।

विवेचन: वज्र महर्षि दधीचि की अस्थियों को गला कर बनाया गया। असुरों और देवों के युद्ध में जब इन्द्र की पराजय होने लगी तब महर्षि दधीचि की अस्थियों से जो आयुध बनाया गया उसे वज्र कहा गया। इन्द्र वज्र को धारण करते हैं।

भगवान कहते हैं कि गायों में मैं कामधेनु हूँ।

कन्दर्प यानी कामदेव। केवल विषयों की ओर ले जाने वाला काम अलग है। सृष्टि के विस्तार के लिए, अपनी पीढ़ियों को आगे बढ़ाने के लिए और पितृ ऋण से मुक्त होने के लिए गृहस्थी के लिए जो धर्म सम्मत बताया गया है, वह काम भगवान की विभूति है।

इसकी व्याख्या गीता के सातवें अध्याय के ग्यारहवें श्लोक में आती है:

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोस्मि भरतर्षभ ||7/11||

अर्थात सुख-बुद्धि का त्याग करके केवल सन्तान की उत्पत्ति के लिए जिस काम का उपयोग किया जाता है, वह काम मैं हूँ।

भगवान आगे कहते हैं कि सारे सर्पों में मैं वासुकि हूँ। वासुकि वह नाग है जिसे समुद्र-मन्थन के समय रस्सी बनाकर उससे समुद्र-मन्थन किया गया था।

10.29, 10.30, 10.31

अनन्तश्चास्मि नागानां(म्), वरुणो यादसामहम्।
पितृणामर्यमा चास्मि, यमः(स्) संयमतामहम्॥10.29॥
प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां(ङ्), कालः(ख्) कलयतामहम्।
मृगाणां(ञ्) च मृगेन्द्रोऽहं(म्), वैनतेयश्च पक्षिणाम्॥10.30॥
पवनः(फ्) पवतामस्मि, रामः(श्) शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां(म्) मकरश्चास्मि, स्रोतसामस्मि जाह्नवी॥10.31॥

नागों में अनन्त (शेषनाग) और जल-जन्तुओं का अधिपति वरुण मैं हूँ। पितरों में अर्यमा और शासन करने वालों में यमराज मैं हूँ। दैत्यों में प्रह्लाद और गणना करने वालों (ज्योतिषियों) में काल मैं हूँ तथा पशुओं में सिंह और पक्षियों में गरुड मैं हूँ।
पवित्र करने वालों में वायु (और) शास्त्रधारियों में राम मैं हूँ। जल-जन्तुओं में मगर मैं हूँ। बहने वाले स्त्रोतों में गंगाजी मैं हूँ।

विवेचन: शेषनाग को एक सहस्र फन वाला अनन्तनाग बताया गया है। भगवान के साथ हर बार उसका भी अवतरण हुआ है। जल में निवास करने वाले समस्त जन्तुओं के अधिपति वरुण भी भगवान की ही विभूति हैं।

सात पितरों में अर्यमा को तथा न्यायपूर्वक शासन करने वालों में यम को भगवान ने अपनी विभूति कहा।

प्रह्लाद जी दैत्यकुल में उत्पन्न होकर भी भक्तराज बने, अतः भगवान उन्हें अपना स्वरूप बताते हैं।

हमारी कालगणना में मास, पक्ष, सप्ताह, दिवस आदि अनेक प्रकार हैं, परन्तु यह सारी कालगणना जिसमें निहित है, वह काल भगवान का ही स्वरूप है।

सारे प्राणियों में सिंह और पक्षियों में गरुड़ अर्थात वैनतेय को भगवान अपनी विभूति बताते हैं। वैनतेय शब्द आया है गरुड़ की माँ विनिता के नाम से। गरुड़ के उड़ने पर जो उनके पङ्खों के फड़फड़ाने से ध्वनि निकलती है, उस ध्वनि में हमारे ऋषि-मुनियों ने एक साम्य पाया और उसे सामगान कहा। इस ध्वनि और सामवेद की रचनाओं में एक समानता है। वायु, श्रीराम, मगर और गङ्गा जी के श्रेष्ठ उदाहरण भी भगवान ने यहाँ पर बताए।

10.32

सर्गाणामादिरन्तश्च,मध्यं(ञ्) चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां(म्), वादः(फ्) प्रवदतामहम्॥10.32॥

हे अर्जुन ! सम्पूर्ण सृष्टियो के आदि, मध्य तथा अन्त में मैं ही हूँ। विद्याओं में अध्यात्मविद्या (ब्रह्म विद्या) और परस्पर शास्त्रार्थ करने वालों का(तत्त्व-निर्णय के लिये किया जाने वाला) वाद मैं हूँ।

विवेचन: भगवान बार-बार बता रहे हैं कि मैं ही सबका आदि, मध्य और अन्त हूँ। सब विद्याओं में श्रेष्ठतम विद्या अध्यात्म विद्या ही है, जिसके परे और कुछ नहीं है। आध्यात्मिक विद्या स्वयं भगवान का अवतरण है, ऐसा भगवान कहते हैं।

परस्पर शास्त्रार्थ करने वालों का तत्त्व के निर्णय के लिए किया जाने वाले वाद को भगवान अपना ही स्वरूप बताते हैं। शास्त्रार्थ तीन प्रकार के होते हैं: जल्प, वितण्ड और वाद। जल्प में एक पक्ष खण्डन करता है और दूसरा पक्ष मण्डन करता है। खण्डन और मण्डन जीतने के लिए किए जाते हैं। आदि शङ्कराचार्य और मण्डन मिश्र का जो शास्त्रार्थ था, वह जल्प था, जिसमें आदि शङ्कराचार्य जीते और मण्डन मिश्र का पराभव हुआ।

वितण्ड में केवल खण्डन होता है। कई लोग ऐसे मिलते हैं जो केवल वितण्डवादी होते हैं। जैसे कोई कहे कि कितना प्यारा बच्चा है! तो वे कहेंगे कि इसमें क्या प्यारा है, हाड़-माँस का पुतला ही तो है, क्षणभङ्गुर है, इसमें क्या सुन्दरता है? कोई कहे कि देखो, कितना सुन्दर सूरज है! तो भी वे कहेंगे कि इसमें क्या सुन्दरता है? यह तो आग का एक गोला है। हर बात को इसी प्रकार नकारात्मक रूप से लेंगे। केवल खण्डन करने में लगे रहने वाले लोगों को भी कई लोग बहुत महत्त्व देते हैं, उनको बड़ा विद्वान समझते हैं।

तीसरा होता है शास्त्रार्थ जिसमें वाद होता है, वह ज्ञान की वृद्धि के लिए किया जाता है, इसका निचोड़ परम ज्ञान निकलता है। इसमें साथ में बैठकर चिन्तन-मनन होता है। उस मन्थन को, उस विचार-विनिमय को वाद कहा जाता है। उसे भी भगवान अपना स्वरूप बताते हैं।

10.33

अक्षराणामकारोऽस्मि, द्वन्द्वः(स्) सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षयः(ख्) कालो, धाताहं(म्) विश्वतोमुखः॥10.33॥

अक्षरों में अकार और समासों में द्वन्द्व समास मैं हूँ। अक्षय काल अर्थात् काल का भी महाकाल (तथा) सब ओर मुख वाला धाता (सबका पालन-पोषण करने वाला भी) मैं ही हूँ।

विवेचन: किसी भी व्यञ्जन में जब तक **अ** नहीं लगाया जाता, तब तक वह पूरा नहीं होता, जैसे क्+अ = क। इसी प्रकार प्रत्येक व्यञ्जन में **अ** है। भगवान कह रहे हैं कि अक्षरों में जो **अ** है, वह मैं हूँ। दो या उनसे अधिक शब्दों का जब विलय हो जाता है, तब वे सामासिक शब्द कहलाते हैं। कई प्रकार के समास हैं, जैसे अव्ययीभाव समास में दो शब्द जुड़ते हैं पर पहले शब्द की प्रधानता ज्यादा रहती है। तत्पुरुष समास जिसमें दूसरे शब्द की प्रधानता ज्यादा रहती है। बाहुब्रीहि समास में दोनों ही शब्दों की प्रधानता नहीं होती, वे किसी अन्य शब्द के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। द्वन्द्व समास ही ऐसा है जिसमें दोनों शब्दों की समान प्रधानता होती है, इसलिए भगवान कह रहे हैं कि समासों में वे द्वन्द्व समास हैं।

श्रीकृष्ण कह रहे हैं कि मैं अक्षय काल हूँ। बाकी सारा समय सूर्य की कालगणना के साथ मापा जाएगा लेकिन जब सूर्य ही विलय हो जाएगा, उस महाप्रलय के समय में जो गणना होगी, वह गणना जिस परिमाण से की जाएगी, वह परिमाण है अक्षय काल। एक दिन यह सूरज भी विलय हो जाएगा। भगवान कह रहे हैं कि वह अक्षय काल मैं हूँ।

सब ओर भगवान के मुख हैं, सब ओर भगवान की दृष्टि है। सब का भरण पोषण करने वाले भगवान हैं, इसलिए भगवान कह रहे हैं कि सब ओर मुख वाला धारणकर्त्ता मैं हूँ।

10.34

मृत्युः(स्) सर्वहरश्चाहम्, उद्भवश्च भविष्यताम्।
कीर्तिः(श्) श्रीर्वाक्च नारीणां(म्), स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा॥10.34॥

सबका हरण करने वाली मृत्यु और भविष्य में उत्पन्न होने वाला मैं हूँ तथा स्त्री-जाति में कीर्ति, श्री, वाक् (वाणी), स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा (मैं हूँ)।

विवेचन: यहाँ भगवान नारी शक्ति की कितनी महिमा बता रहे हैं कि स्त्रियों में मैं कीर्ति हूँ, श्री हूँ, वाक हूँ, स्मृति हूँ, मेधा हूँ, धृति

हूँ और क्षमा हूँ। उन्होंने यहाँ यह मुख्य रूप से कह दिया है कि नारियों में मैं विद्यमान हूँ, इनकी सारी शक्तियाँ मैं ही हूँ।

हमारे यहाँ नारी का सम्मान बहुत किया गया है यह इसका भी एक उदाहरण है। अन्यथा बहुत सी ऐसी बातें होती रहती हैं कि सनातन संस्कृति पुरुष प्रधान संस्कृति है।

हमारे यहाँ कहा जाता है:

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ।। मनुस्मृति ३/५६ ।।

जहाँ पर नारी का पूजन होता है, वहाँ नारायण आकर बसते हैं। हमारे यहाँ भगवान के प्रत्येक नाम से पहले भगवती का नाम लिया गया है। हम **विष्णु लक्ष्मी** ना कहकर **लक्ष्मी विष्णु** या **लक्ष्मी नारायण** कहते हैं, हम **सीताराम, राधा कृष्ण** कहते हैं। नारी का सम्मान हमारी मूलभूत संरचना में व्याप्त है।

10.35

बृहत्साम तथा साम्नां(ङ्),गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां(म्) मार्गशीर्षोऽहम्, ऋतूनां(ङ्) कुसुमाकरः॥10.35॥

गायी जाने वाली श्रुतियों में बृहत्साम और सब छन्दों में गायत्री छन्द मैं हूँ। बारह महीनों में मार्गशीर्ष (और) छः ऋतुओं में वसन्त मैं हूँ।

विवेचन: भगवान कहते हैं कि यदि मुझे देखना है तो सारी सुन्दर-सुन्दर चीजों में मुझे देख लो। गायी जाने वाली श्रुतियों में मैं बृहत्साम हूँ। छन्दों में मैं गायत्री छन्द हूँ, बारह महीनों में मैं मार्गशीर्ष हूँ और ऋतुओं में मैं वसन्त ऋतु हूँ, जिसमें कि सारे पुष्प खिल जाते हैं।

10.36

द्यूतं(ञ्) छलयतामस्मि,तेजस्तेजस्विनामहम्।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि, सत्त्वं(म्) सत्त्ववतामहम्॥10.36॥

छल करने वालों में जुआ (और) तेजस्वियों में तेज मैं हूँ। (जीतने वालों की) विजय, (निश्चय करने वालों का) निश्चय (और) सात्त्विक मनुष्यों का सात्त्विक भाव मैं हूँ।

विवेचन: यह सुनने में विचित्र लग रहा है कि छल करने वालों में मैं जुआ हूँ। भगवान ऐसा इसलिए कह रहे हैं कि जुआरी को भी जुआ खेलते-खेलते एक दिन यह आभास हो जाना चाहिए कि भगवत् सत्ता सर्वोपरि है और एक दिन वह भी भगवान के मार्ग पर चल पड़े। भगवान कहते हैं कि मैं चराचर सृष्टि में व्याप्त हूँ।

10.37, 10.38

वृष्णीनां(म्) वासुदेवोऽस्मि, पाण्डवानां(न्) धनञ्जयः।
मुनीनामप्यहं(म्) व्यासः(ख्), कवीनामुशना कविः॥10.37॥
दण्डो दमयतामस्मि, नीतिरस्मि जिगीषताम्।
मौनं(ञ्) चैवास्मि गुह्यानां(ञ्), ज्ञानं(ञ्) ज्ञानवतामहम्॥10.38॥

वृष्णि वंशियों में वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण (और) पाण्डवों में अर्जुन मैं हूँ। मुनियों में वेदव्यास (और) कवियों में कवि शुक्राचार्य भी मैं

हूँ।
दमन करनेवालोंमें दण्डनीति और विजय चाहनेवालोंमें नीति मैं हूँ। गोपनीय भावोंमें मौन और ज्ञानवानोंमें ज्ञान मैं हूँ।

विवेचन: भगवान वहीं उपस्थित श्रीकृष्ण और अर्जुन को भी अपना ही स्वरूप कहते हैं। यहाँ दण्डनीति, विजयनीति, मौन और ज्ञान को भी भगवान अपना स्वरूप कहते हैं। अर्थात यहाँ केवल मूर्त और प्रकट वस्तुओं की ही बात नहीं हो रही है। कुछ चीजें अप्रकट हैं, अमूर्त्त हैं, जैसे ज्ञान को देखा नहीं जा सकता, समझा जा सकता है, अनुभव किया जा सकता है, लेकिन उसे बाहर निकाल कर पता नहीं किया जा सकता। अमूर्त्त और मूर्त्त सब चीजों में भगवान का अस्तित्व है।

10.39

यच्चापि सर्वभूतानां(म्), बीजं(न्) तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्, मया भूतं(ञ्) चराचरम्॥10.39॥

और हे अर्जुन! सम्पूर्ण प्राणियों का जो बीज (मूलकारण) है, वह बीज भी मैं ही हूँ; (क्योंकि) वह चर-अचर (कोई) प्राणी नहीं है जो मेरे बिना हो अर्थात् चर-अचर सब कुछ मैं ही हूँ।

विवेचन: भगवान कह रहे हैं कि चर और अचर सम्पूर्ण प्राणियों का बीज मैं हूँ क्योंकि मेरे बिना कोई भी चराचर प्राणी नहीं है। अगर हमने यह जान लिया तो फिर सारी विभूतियाँ ध्यान में रखने का कोई कारण नहीं बनता। फिर भी भगवान ने अर्जुन को सब समझाया है।

दूसरी-तीसरी कक्षा में आने के बाद ग से गणेश जैसा कुछ भी ध्यान में रखने की आवश्यकता नहीं रहती। उसी प्रकार एक बार समझ लिया कि यह सारी विभूतियाँ भगवान की हैं, तो उसके पश्चात उनको ध्यान में रखने की आवश्यकता नहीं। भगवान स्वयं इस बात को अधोरेखित करते हैं।

10.40

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां(म्), विभूतीनां(म्) परन्तप।
एष तूद्देशतः(फ्) प्रोक्तो,विभूतेर्विस्तरो मया॥10.40॥

हे परंतप अर्जुन ! मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं है। मैंने (तुम्हारे सामने अपनी) विभूतियों का जो विस्तार कहा है, यह तो (केवल) संक्षेप से नामनात्र कहा है।

विवेचन: किसी गृहणी को चावल पके या नहीं यह देखने के लिए केवल एक चावल के दाने को जाँचने के आवश्यकता होती है। भगवान कह रहे हैं कि मैंने अपनी इतनी विभूतियाँ बता दीं तो अर्जुन तुम यह समझ लो कि मैं चराचर सृष्टि में व्याप्त हूँ।

10.41

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं(म्), श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं(म्), मम तेजोंऽशसम्भवम्॥10.41॥

जो-जो ऐश्वर्ययुक्त, शोभायुक्त और बलयुक्त प्राणी तथा पदार्थ हैं, उस-उसको तुम मेरे ही तेज (योग अर्थात् सामर्थ्य) के अंश से उत्पन्न हुई समझो।

विवेचन: भगवान योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं कि सृष्टि में जो ऐश्वर्ययुक्त, शोभायुक्त और बलयुक्त प्राणी और वस्तु है, उसे तू मेरे ही तेज से उत्पन्न समझ। भगवान ने कुछ भी नहीं छोड़ा और बताया है कि सब कुछ मेरा है।

10.42

अथवा बहुनैतेन, किं(ञ्) ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं(ङ्) कृत्स्नम्, एकांशेन स्थितो जगत्॥10.42॥

अथवा हे अर्जुन ! तुम्हें इस प्रकार बहुत-सी बातें जानने की क्या आवश्यकता है? (जबकि) मैं (अपने किसी) एक अंश से इस सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके स्थित हूँ अर्थात् अनन्त ब्रह्मांड मेरे एक अंश में है।

विवेचन: भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! इस प्रकार तुम्हें बहुत सी बातें जानने की क्या आवश्यकता है? मैं अपने किसी एक अंश से सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके स्थित हूँ। सारी चराचर सृष्टि ही मैं हूँ। यह कहने के लिए भगवान ने कुछ उदाहरण बताए हैं और फिर कह दिया कि बीज तो मैं ही हूँ और यह जो सारा विस्तार हुआ है, वह मेरे बीज के कारण है, मैं चराचर सृष्टि में व्याप्त हूँ।

यहाँ पर यह विभूति योग का ज्ञानमय विवेचन पूर्ण हुआ। इसके पश्चात प्रश्नोत्तर हुए।

<u>प्रश्नोत्तर सत्र:</u>

प्रश्नकर्त्ता: कमलेश शर्मा दीदी

प्रश्न: गीता में भगवान ने भूत और उच्छिष्ट किसे कहा है?

उत्तर: सम्पूर्ण प्राणशक्ति से युक्त चर-अचर को भगवान ने भूत कहा है। उच्छिष्ट का अर्थ होता है जूठा। तीन प्रकार के अन्नों में जूठे पदार्थ को तामस के अन्तर्गत कहा गया है। एक ही थाली से दूसरा खाए तो उसे जूठा समझते हैं। कोरोना काल में हमें अपनी शास्त्रोक्त रीतियों की महत्ता पता चलीं।

प्रश्नकर्त्ता: कमलेश शर्मा दीदी

प्रश्न: हमारे यहाँ पीपल के वृक्ष को घर में लगाने से मना क्यों किया जाता है?

उत्तर: पीपल की जड़ें बहुत मजबूत और फैलने वाली होती हैं, जो पत्थर को भी फोड़ देती हैं। इसलिए घर से कुछ दूरी पर लगाने को बोला जाता है अन्यथा घर की नींव को खतरा हो जाता है।

वृक्ष को बढ़ने ही नहीं देना भी पाप माना जाता है, इसलिए बोन्साई को भी निशुद्ध माना गया है।

प्रश्नकर्त्ता: अक्षय भैया

प्रश्न: इस अध्याय में भगवान ने स्वयं को मन कहा है और अन्य किसी अध्याय में भगवान ने मन को बुद्धि से नियन्त्रण में रखने की बात कही है। ऐसा क्यों?

उत्तर: भगवान ने छठे अध्याय में कहा है कि-

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥6.5॥

भगवान ने बताया है कि मन हमारा मित्र भी बन सकता है और शत्रु भी बन सकता है। परन्तु इस अध्याय में भगवान ने जो मन कहा है वह श्रेष्ठतम मन की बात कही है। वह मन जो निश्चय नहीं कर सकता, डरपोक है, तुरन्त बह जाता है, ऐसे मन में

भगवान का वास नहीं हो सकता। हर हाथी में भगवान ने खुद को नहीं बताया जबकि बताया है कि एरावत में मैं हूँ। भगवान तो उस मन में निवास करते हैं जो निश्चय और अभय के साथ चलने वाला है। वह मन ही भगवान की विभूति है। मन से परे बुद्धि होती है। बुद्धि की लगाम अगर मन पर है तो सर्वश्रेष्ठ है। इसका अभ्यास हम अपने जीवन में इस प्रकार कर सकते हैं कि अब पुरुषोत्तम मास में श्रावण मास में चार सोमवार आएँगे तब हम अपनी जिह्वा पर, अपने मन पर विजय पाकर उनका निग्रह करें।

प्रारम्भ में कठिन लगता है पर मन का दमन प्रारम्भ में ही करना पड़ता है, बाद में यह सब कुछ मन से होता है। बाद में **द** पृथक हो जाता है और फिर सब **मन** से होता है। यह निश्चयात्मक मन भगवान का ही रूप है।

प्रश्नकर्त्ता: अक्षय भैया

प्रश्न: मन यदि भगवान है, तो फिर आत्मा क्या है?

उत्तर: आत्मा तो मन-बुद्धि से भी परे है। वह शरीर में केवल उपस्थित रहती है। जो कुछ भी घटित होता है, वह प्रकृति में अर्थात पाँच महाभूतों और मन, बुद्धि और अहङ्कार में ही घटित होता है। प्रकृति के अधीन हो कर आत्मा भीतर बैठा है, वह इस अष्टधा प्रकृति से भिन्न है। उसके अस्तित्व की सुगन्ध प्राप्त करने के लिए अष्टाङ्ग योग की साधना बतायी गयी है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(म्) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः ॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'विभूतियोग' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||